धर्म चक्र प्रवर्तन की क्रान्तिकारी प्रक्रिया

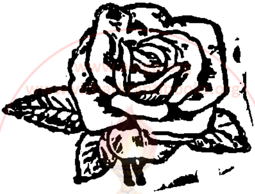

--श्रीराम शर्मा आचार्य

: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

BRAHMVARCHAS SHODH SANSTHAN
SHANTIKUNJ, HARIDWAR, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org

: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalay, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India
E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org

धर्म चक्र प्रवर्तन की क्रान्तिकारी प्रक्रिया

जिन दिनों भारतीय वर्चस्व अधःपतन के गर्त में औंधे मुँह गिरा पड़ा था—और उसकी दुर्दशा से दूरवर्ती क्षेत्रों में विविध विधि नारकीय विकृतियाँ उत्पन्न हो रही थीं, उन्हीं दिनों एक महान क्रांति का अवतरण हुआ। यह क्रान्ति भगवान बुद्ध के नेतृत्व में प्रकट हुई। स्थिति को बदला जाना आवश्यक था। ऐसी व्यापक आवश्यकताओं की पूर्ति सुगठित क्रान्तियां ही सम्पन्न करती हैं। उसका नेतृत्व श्रेय किसी को भी क्यों न मिले पर वस्तुतः उस परिवर्तन अभियान में जन-भावना का उभार ही काम करता है। यह अलग बात है कि उसे उभारने वालों की अग्रिम पंक्ति में कौन था—नेतृत्व किसने किया और श्रेय किसे मिला?

यह आवश्यकाता अनुभव हुई कि प्रतिगामी परिस्थितियों को बदला जाय। भारत के प्राचीन वर्चस्व और कर्तृत्व का पुनरुद्धार किया जाय। संव्याप्त विकृतियों और विपत्तियों का निराकरण किया जाय। इसके लिए आँधी तूफान जैसे परिवर्तन अभियान की आवश्यकता थी। वह भगवान बुद्धके अन्तःकरण में सर्व प्रथम एक चिनगारी के रूप में फूटी और देखते-देखते सुविस्तृत दावानल के रूप में प्रखर एवं प्रचण्ड हो गई।

समय की पुकार ने एक सामान्य स्थिति और सामान्य स्तर के राजकुमार का अन्तःकरण छुआ। इस भाव-विभोर ने ठान ठानी कि वह वैयक्तिक सुख सुविधाओं का परित्याग करेगा—अपने परिवार को भी कठिनाइयाँ सहने कोबाध्य करेगा और उस कष्ट साध्य मार्ग पर चलेगा, जिस पर चलते हुए

बीज गलता है और अपने अस्तित्व को दूसरों की सुख-सुविधा के लिए अभिनव वृक्ष के रूप में परिणित कर देता है। इसी भाव भरे साहसिक संकल्प का नाम भगवान बुद्ध का अवतरण है। यों बाहर से बुद्ध-चरित्र एक व्यक्ति विशेष का विशिष्ट कर्तृत्व दिखाई पड़ता है, पर वस्तुतः तात्विक दृष्टि से उसे एक विद्रोह ही कहना चाहिए जिसने तात्कालिक विकृतियों का उन्मूलन करने वाली ज्वाला के रूप में जन्म लिया था। समय-समय पर भगवान के अवतार भी इसी प्रयोजन के लिए होते रहते हैं। धर्म की स्थापना का दूसरा पक्ष अधर्म का उन्मूलन है। दोनों पक्षों को मिलाकर एक पूरी बात बनती है। भगवान बुद्ध ने सामयिक विकृतियों के प्रति विद्रोह एवं संघर्ष खड़ा किया, साथ ही ऐसी भावनात्मक नव निर्माण की आधार शिला भी रखी जिस पर मानवी गरिमा का सुदृढ़ दुर्ग पुनः स्थापित किया जा सके। इस उभय पक्षीय अभियान का नाम ही बुद्ध भगवान का अवतरण है भारतीय इतिहास में इस अवतरण को असामान्य और अति महत्त्वपूर्ण माना जाता रहेगा।

अन्धकार युग की विकृतियों के कारण उत्पन्न हुए असंतुलन का निराकरण करने के लिए अतीत की अगणित महाक्रान्तियों की तरह अब से कोई ढाई हजार वर्ष पूर्व एक क्रान्ति भगवान बुद्ध के नेतृत्व में हुई। उन्होंने तत्कालीन अनाचार को ध्यान पूर्वक देखा—उसके दुष्परिणामों को समझा और प्रवाह को बदलने के लिए अपनी सम्पूर्ण साहसिकता एवं सद्भावना प्रयुक्त करते हुए जुट गये। सदुद्देश्य के लिए जब कोई प्रामाणिक व्यक्ति आगे आता है, अपनी निःस्वार्थ परमार्थ-निष्ठा एवं दूरदर्शितापूर्ण रूपरेखा से जनमानस को प्रभावित करता है तो अगणित साथी अनुयायी कदम से कदम, कंधे से कंधा मिला कर साथ चलने के लिए तैयार हो जाते हैं। भगवान बुद्ध चले तो अकेले पर उन्हें साथियों, अनुयायियों की कमी नहीं रही।

भगवान बुद्ध के अवतरण-युग में सर्वत्र अवांछनीयता का बोलबाला था। धर्म का आडम्बर ओढ़ कर अधर्म का नग्न नर्तन चल रहा था। भारतीय धर्म अपना मानव धर्म जैसा शाश्वत स्वरूप खो चुका था। अन्ध विश्वासों और

रूढ़ियों को ही धर्म का पर्यायवाची माना जाने लगा था। गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर विनिर्मित वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर जन्म-जाति की ऊँच नीच छूत-छात पनप गई थी। जातियों-उपजातियों के नाम पर देश के सहस्रों टुकड़े होकर बिखर रहे थे। जातियों के लिए अलग-अलग कानून और अधिकार, सुविधा और प्रतिबंध ऐसे बने थे, जिनमें न्याय और औचित्य की बेतरह अवज्ञा की गई थी। ब्राह्मण अत्यधिक सुविधा और सम्मान के पात्र थे। क्षत्रियों को हर तरह की मनमानी करने की छूट थी। शूद्रों और अछूतों के अधिकार लगभग पशुओं जितने ही सीमित रह गये थे। साधना के नाम पर स्वेच्छाचारी ताँत्रिक वाममार्ग का बोलवाला था। यज्ञ का पवित्र धर्म-कृत्य निरीह पशुओं को भून खाने की भट्टी मात्र रह गया था। अविवेक और अनाचार की दिशा में बहते हुए इस प्रवाह ने नीति, न्याय एवं औचित्य का गला घोंट दिया था ऐसे समय में भगवान बुद्ध जन्मे। चारों ओर छाये हुए इस सघन अन्धकार को देखा तो उनकी आत्मा छटपटाने लगी। उन्होंने अपनी आहुति देकर इस अन्धकार से लड़ने का निश्चय किया। व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को तिलांजलि देने के बाद ही मनुष्य किन्हीं महान आदर्शों को पूरा कर सकने में समर्थ होता है। बुद्ध ने उसी शाश्वत मार्ग को अपनाया, वे अपने राज-वैभव और पारिवारिक सुख को ठुकराकर युग की पुकार को पूरा करने के लिए घर छोड़कर निकल पड़े और निश्चय किया कि वे अपने लिए, अपने छोटे परिवार के लिए नहीं जियेंगे, वरन् लोक-मंगल के लिए ही उनका समग्र समर्पण होगा।

दूसरा कदम भगवान बुद्ध ने यह उठाया कि अपने को महान प्रयोजन की पूर्ति के लायक क्षमता-सम्पन्न बनाने में जुटा दिया। उन्होंने तप किया, अपने उन दोष दुर्गुणों को धोया जिनके रहते सार्वजनिक सेवा विषाक्त हो जाती है और हित-साधन करने का उद्देश्य उल्टा अहितकर परिणाम प्रस्तुत करता है। ज्ञान की साधना परमार्थ परायण व्यक्ति के लिए आवश्यक है। आत्म-निरीक्षण आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म विकास की चतुर्विधि तपश्चर्या से ही आत्मा को परमात्मा के स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार

आत्मिक दृष्टिसे ऊँचा उठा हुआ मनुष्य ही स्व--पर कल्याणकर सकने में समर्थ होता है। बुद्ध इस महासत्य को जानते थे इसलिए वे गृह-त्याग के उपरान्त बोधि-गया में बोधि द्रुम के नीचे बैठकर सत्य का प्रकाश पाने के लिए साधना रत हो गये। यहाँ उन्हें बुधत्व प्राप्त हुआ। वे राजकुमार गौतम से बदल कर भगवान बुद्ध वन गये।

तीसरा कदम बुद्ध का था धर्म चक्र-प्रवर्तन। लोक-मानस में छाई हुई काली घटाओं को निरस्त करने के लिए सद्ज्ञान की ज्योति जलाना अनिवार्य होता है। वही उन्हें भी करना पड़ा। घर-घर जाकर जन-जन से सम्पर्क बनाना भिक्षावृत्ति अपनाकर ही हो सकता है, सो उन्होंने उसी वृत्ति को धारण किया, अपने को 'भिक्षु' श्रेणी में जा बिठाया। ज्ञान-प्रसार का कार्य एकाकी भी नहीं हो सकता था, इस लिए उन्होंने शिष्य, अनुयायी बनाये। जिन्हें परिपक्व पाया उन्हें सद्ज्ञान का आलोक सर्वत्र फैलाने के लिए परिव्राजक बनाया। यही धर्म-चक्र प्रवर्तन अभियान था। भावनात्मक जड़ता की मृत मूर्छित स्थिति से उबर कर सजग और सक्रिय बनाने के लिए आत्मदानी व्यक्तियों को समग्र निष्ठा से जुटना पड़ता है। बुद्ध ने अपने शिष्य इसीलिए बनाये। इसी प्रयोजन को जीवन-लक्ष्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन बनाया। उनके प्रभाव और परामर्श के प्रकाश में सहस्रों नर-नारी आगे आये और एक स्थान पर रहकर नहीं देश-देशान्तरों में ज्ञान का प्रकाश फैलाने को कटिबद्ध हो गये। धर्म-चक्र का अभियान अग्रगामी हुआ और वह 'धर्म विजय' के रूप में सुविस्तृत बन गया। भूत-काल में प्रतापी राजा देश-विजय के लिए निकलते थे, अपना आधिपत्य सुदूर क्षेत्रों में स्थापित करते थे। बुद्ध का अभियान इससे भिन्न था। उन्होंने देश-विजय के स्थान पर धर्म-विजय की योजना बनाई और उसे किसी देश, धर्म तक सीमित न रख कर विश्वव्यापी बनाने का कार्यक्रम निर्धारित किया।

वाराणसी से उत्तर दिशा में छै मील पर सारनाथ में उन्होंने धर्म-चक्र प्रवर्तन आरंभ किया। तब उनके पास उपयुक्त शिष्यों की संख्या केवल पाँच थी। इतनी कम संख्या के बल पर इतना विशाल प्रयोजन कैसे पूरा हो सकता है, इसकी उन्होंने तनिक भी चिन्ता नहीं की वे जानते थे कि यदि आदर्श ऊँचा

हो—संचालन दूरदर्शिता पूर्ण हो और कर्मरत मनुष्य भाव भरे हों तो सदुद्देश्य निश्चित रूप से आगे बढ़ते हैं और अन्ततः पूर्ण होकर रहते हैं। बुद्ध ने कौडिन्य वग्र, महानाम, भद्र, और अश्वजित नाम के तत्कालीन पांच शिष्यों को बुलाकर प्रव्रज्या की दीक्षा दी और कहा—'भिक्षुओ ! अब तुम जाओ और मनुष्यों तथा देवताओं की भलाई के लिए परिव्राजक बनो। तुम उच्च आदर्शों का प्रचार करो और पवित्र जीवन जीने की विद्या समझाओ।'

बौद्ध-धर्म मध्यम-मार्ग का उपदेश देता है। उसमें कट्टरता नहीं है। परिस्थितियों के अनुसार नियम-उपनियमों में थोड़ी शिथिलता बरतने की गुंजायश है, ताकि हर स्थिति का मनुष्य उसमें प्रवेश कर सके और जितना संभव हो उतना लाभ उठाने एवं सहयोग देने के लिए अग्रसर हो सके। चरित्र और आदर्शों को तो कड़ाई से पालने पर जोर दिया गया है, पर बाह्य व्यवहार एवं रहन-सहन में थोड़ी भिन्नता रहने पर आपत्ति नहीं की गई। 'अंगुत्तर निकाय' में एक जगह वर्णन है—'बज्जी पुत्रक नामक भिक्षु तथागत के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला—श्रमणों के लिए जो २५० नियम निर्धारित हैं वे मुझ से नहीं सधते। इस पर भगवान बुद्ध ने कहा—'तब तुम तीन नियमों को पालते हुए अपना धर्म निवाहो।'

बौद्ध-धर्म को हिन्दू-धर्म से पृथक मानना सर्वथा भूल है। भगवान बुद्ध एक सुधारवादी थे उन्होंने हिन्दू-धर्म में प्रविष्ट हुई सामयिक विकृतियों का विरोध करके ऋषि प्रणीत भारतीय धर्म के मूलभूत आदर्शों की स्थापना मात्र की है। कोई नया धर्म नहीं चलाया। उनके समय में तांत्रिक वामाचार का बोल-बाला था। देवताओं के नाम पर पशुवलि का घिनौना प्रचलन चल पड़ा था। अनाचार को धर्म का आवरण उढ़ाकर वर्ग-भेद के विषवृक्ष उगाये जा रहे थे। ईश्वर-भक्ति के नाम पर उपहासास्पद कर्मकाण्डों का आकश-पाताल जितना महत्त्व बताया जा रहा था। मनुष्य दास-दासी के रूप में खरीदे-बेचे और दान दिये जाते थे। और भी न जाने क्या-क्या होता था। उन दिनों वैदिक-धर्म—ब्राह्मण-धर्म मात्र बन कर रह गया था। पुरोहित-वर्ग और उनके पिछलग्गू लोग ही देव-कृपा और धर्म-धारणा की आशा करते थे। शेष तो हेय

उपेक्षित बना दिये गये थे । यह धार्मिक क्षेत्र में उत्पन्न हुई विकृतियाँ देश के समस्त वातावण को विषाक्त बनाये हुये थी । उनका धुँआ पूरे मानसिक, सामाजिकक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक स्तर को कलुषित बनाता चला जा रहा था । बुद्ध ने विष–वृक्ष के पत्ते काटने के झंझट में न पड़ कर जड़ पर प्रहार किया । भावनात्मक अपकर्ष की समस्त अवांछनीयताओं का उद्गम समझकर उन्होंने सुधार भी वहीं से आरम्भ किया वे जानते थे कि भावनात्मक परिष्कार किये बिना विभिन्न क्षेत्रों में फैली अगणित विपन्नताओं का और किसी उपाय से समाधान सम्भव न हो सकेगा । अतः वे समस्त क्रान्तियों की जननी भाव-क्रान्ति में जुट गये ।

बुद्ध का प्रतिपादन तीन सूत्रों में सार रूप से प्रस्तुत किया गया है– 'बुद्ध शरणं गच्छामि'–'धम्मं शरणं गच्छामि' –संघं शरणं गच्छामि । 'हम बुद्धि के विवेक की शरण में जाते हैं'—'हम धर्म की नीति-निष्ठा का वरण करते हैं'–'हम संघबद्ध होकर विकसित होने का व्रत लेते हैं । विवेक, न्याय और एकता यही है । वे सूत्र जो बौद्ध धर्म के आधार-लक्ष्य है, उन्हीं को सनातन वैदिक–धर्म का सार भी कह सकते हैं । इस प्रकार वे प्राचीन आर्य धर्म के पुनरुद्धार कर्ता ही कहे जा सकते है । उनका अलग से कोई सम्प्रदाय स्थापित करने का विचार स्वप्न में भी नहीं था । उन्होंने अपने प्रवचनों में स्थान-स्थान पर' समय-समय पर आर्ष मान्यताओं के हो उद्धरण और प्रमाण प्रस्तुत किये हैं ।

विज्ञ-जनों ने यह एक स्वर से स्वीकार किया है कि बौद्ध और हिन्दू धर्म एक हैं । भारतीय दर्शन में विचार-स्वतंत्रता के लिए पूरी गुंजायश है । यही कारण है कि यहाँ छै दर्शनों का उद्भव हुआ और उनमें मतभेद स्पष्ट है । शैव और वैष्णव धर्म–श्रोत और स्मार्त आचार–आगम और निगम दर्शन पहले से ही प्रचलित थे । इसी प्रकार बौद्ध धर्म को अधिक से अधिक हिन्दू–धर्म का सुधरा हुआ रूप भर माना जा सकता है । ईसाई धर्म में भी पुरातन पंथी और सुधारपंथी दो वर्ग हैं । मुसलमानों में भी शिया-सुन्नी का भेद है । इतने पर भी ईसाई धर्म या मुसलमान धर्म दो-दो नहीं माने जाते ।

ब्राह्मण-धर्म और बौद्ध धर्म को एक ही हिन्दू-धर्म की दो शाखाओं से अधिक और कुछ नहीं माना जा सकता ।

धर्म-क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रायः स्वेच्छाचार बरतते हैं। वे अपने क्रिया कलाप पर किसी का नियंत्रण स्वीकार नहीं करते। फलतः उस वर्ग में फैली हुई विश्रृंखलता कोई कार्य नहीं करने देती। धर्म की एक विशेषता उसकी अनुशासनशीलता भी थी। व्यक्तिगत जीवन में श्रमणों को कठोरता पूर्वक व्रतशील रहना पड़ता था और सामूहिक जीवन में वे संघ द्वारा निर्धारित कार्य पद्धति को श्रद्धा भरे अनुशासन के साथ पालन करते थे। व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाओं से, पद-प्रतिष्ठा से दूर रह कर ही लक्ष्य पूर्ति की दिशा में बढ़ा जा सकता है, यह बात आरंभ से ही मन में भरी जाती थी और कहा जाता था कि जो अपने यश, वर्चस्व के लिए लालायित होगा वही धर्म-चक्र में सब से बड़ा अवरोध गिना जायगा। निजी यशस्विता साथियों को गिरा कर और अपना अलग से कुछ विलक्षण खड़ा करके ही उपलब्ध हो सकती है। जो इसके लिए मरेगा वह धर्म-विजय के लक्ष्य को क्षति पहुँचाये बिना न रहेगा। इन आदर्शों को श्रद्धा के साण अंगीकार करने का परिणाम यह हुआ कि बौद्ध-धर्म प्रचारक निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में आशातीत सफलता के साथ अग्रसर हो सके। भारतीव संस्कृति के विस्तारके लिए आज भी उसी परम्पराका अनुगमन करना होगा।

क्र. २१७/प्र० युग निर्माण योजना, मु० युग निर्माण प्रेस मथुरा, मूल्य ४० पैसा